नियमसार, गाथा १५६। क्या कहते हैं? धर्म ऐसी कोई सूक्ष्म चीज़ है कि साधारण प्राणी के साथ वादविवाद करना नहीं। साधारण मनुष्य तो बेचारा व्यापार-धन्धा में मजदूरी में पड़े हों और पूरे दिन मजदूरी (करे)। उसमें तत्त्व की बातें कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। अब यह किस प्रकार जँचे? आहाहा! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! आत्मा, शरीर को स्पर्श नहीं करता। शरीर को कर्म स्पर्श नहीं करता; कर्म को शरीर स्पर्श नहीं करता और प्रत्येक पदार्थ क्रमबद्ध, क्रमसर जो पर्याय जिस काल में होनेवाली है, वह होती है, क्रमसर होती है। अब यह बात जगत को कहाँ बेचारे को (जँचे)? धन्धा-पानी में पाप में पड़े हों! इसलिए कहते हैं कि तू वादविवाद करना नहीं। कोई ऐसे जैन के सम्प्रदायवाले हों या अन्यवाले हों, उनके साथ वादविवाद करना नहीं। यह वस्तु सूक्ष्म है। जँचना कठिन है। क्योंकि बहुत से जीवों की तो भव्य और अभव्य जाति, सुखादि की प्राप्ति की लब्धि। आया न? कहाँ तक आया था?

काललब्धि पकी हो, **काल, करण, उपदेश, उपशम और प्रायोग्यतारूप भेदों के कारण पाँच प्रकार की है। इसलिए परमार्थ के जाननेवालों को स्वसमयों तथा परसमयों के साथ...** जैनधर्म के साथ, उसमें रहे हुए वाड़ावालों के साथ या अन्यमत के साथ वादविवाद करना नहीं। नहीं जँचेगी, बापू! आहाहा! एक परमाणु दूसरे परमाणु को स्पर्श नहीं करता। कैसे जँचे? कभी सुना न हो उसके बाप-दादा ने। यह अँगुली इस अँगुली को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! क्योंकि यह तत्त्व भिन्न और यह तत्त्व भिन्न। एक

तत्त्व और दूसरे तत्त्व के बीच तो अत्यन्त अभाव है। अब उसे किसप्रकार जँचे कि नहीं स्पर्शता? उसके साथ तू बात किस प्रकार करेगा?

और प्रत्येक द्रव्य भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने देखा। छह द्रव्य देखे हैं जाति से। वैसे अनन्त (द्रव्य हैं)। उनमें प्रत्येक (द्रव्य) की प्रत्येक समय की जो पर्याय, जिस समय में—जिस काल में होनेवाली है, उस काल में होगी। आड़ी-टेड़ी नहीं होगी। किसके साथ तू वाद करेगा? आहाहा! जिसे धर्म की खबर ही नहीं, धर्म कैसे होता है- इसकी खबर ही नहीं, संसार के जंजाल में पड़े हैं, उन्हें कहते हैं यह बात नहीं जँचेगी; इसलिए उनके साथ वादविवाद—तेरे समय के साथ और पर के साथ करना नहीं। आहाहा! है? ऐसी सूक्ष्म बात है।

जिस समय में जिस द्रव्य की जो पर्याय होनेवाली है, उस समय में होगी, क्रमबद्ध होगी, धाराबन्ध होगी और फिर एक पर्याय दूसरी पर्याय को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! कहो, ऐसी सब बात कहाँ से जँचे? किसके साथ तू विवाद करेगा? कि लोग बेचारे जैनदर्शन (एक पत्रिका) में लिखा ही करते हैं, एकान्त है... एकान्त है... एकान्त है। बात सत्य। उनकी दृष्टि में यह बात जँचती नहीं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। परमाणु, आत्मा को तो स्पर्श नहीं करता, परन्तु एक परमाणु, दूसरे परमाणु को स्पर्श नहीं करता। उसे तुम किस प्रकार बात जँचाओगे?

एक बार कहा था न? किसी का कुछ कर सकता नहीं। तब वह 'चीमन चकु' था यहाँ। (संवत्) १९९७ के वर्ष में। 'लींबडीवाला'। मुम्बई नहीं? चिमनचकु, स्थानकवासी में। लो, यह किया। नहीं किया जा सकता क्या? यह किया। ऐसा व्याख्यान में बोला था। १९९७ के वर्ष। कहा, बापू! उसमें क्या हुआ है? ऐसा किया, उसमें क्या हुआ है, खबर है? वह जड़ की पर्याय हुई और आत्मा ने भी अपने अपने परिणाम को किया। वे परिणाम, शरीर के परिणाम को स्पर्श भी नहीं करते। लो, यह किया। नहीं कहाँ किया जा सकता - ऐसा बोला था।

मुमुक्षु : ऊँचा हाथ किया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा किया था। ऊँचा हाथ किया ऐसे। (बोला) यह किया, लो!

अरे! भाई! एक परमाणु भी दूसरे परमाणु को धक्का नहीं मार सकता। आहाहा! यह लकड़ी है, वह ऊँची होती है, वह अँगुली से नहीं। अँगुली के कारण ऊँची रही नहीं, क्योंकि उसमें अधिकरण नाम का गुण स्वयं में है। वह अपने आधार से रही है; अँगुली के आधार से नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : इन्द्रियज्ञानवाला स्वीकार नहीं करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं करे। कैसा?

मुमुक्षु : इन्द्रियज्ञानवाला स्वीकार नहीं करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्प्रदायवाले यह बात नहीं माने।

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं कर सकता। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं। प्रत्येक द्रव्य की क्रमसर जिस समय में होनेवाली है, वह पर्याय होती है और एक द्रव्य में द्रव्य-गुण-पर्याय के तीन भेद करे तो भी विकल्प होगा, अधर्म होगा, अधर्म होगा। अरे! कौन माने? किसने सुना हो बेचारों ने? एक द्रव्य-आत्मा द्रव्य है, उसमें गुण हैं और उसमें पर्याय है। एक में तीन का विचार करे तो अधर्म होगा। राग होगा कहो या अधर्म होगा कहो। कड़क भाषा है। आहाहा! एक में दो भेद कर तो अधर्म होगा। गुणी आत्मा और अनन्तानन्त गुण—ऐसा भेद करेगा तो अधर्म होगा। विकल्प होगा अर्थात् अधर्म होगा। आहाहा! किसके साथ वादविवाद करेगा? भाई! किसके साथ इस चर्चा में उतरेगा कि उतारो अपने चर्चा करो। यह यहाँ कहते हैं, देखो!

परमार्थ के जाननेवालों को स्वसमयों... अर्थात् अपने में, जैनधर्म में **तथा परसमयों...** अर्थात् अन्यधर्म में **साथ वाद करने योग्य नहीं है।** है? आहाहा! यह कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते जाते हैं। तत्त्व की प्ररूपणा करते जाते हैं और फिर ऐसा भी कहते जाते हैं कि वादविवाद करना नहीं, हों! तू समझकर समा जा। आहाहा! जहाँ विकल्प को अवकाश नहीं। विकल्प शुभ है, वह अधर्म है। धर्मी ऐसा भगवान आत्मा, ऐसे विकल्प—अधर्म को स्पर्श भी नहीं करता और उसके कारण आत्मा को जरा भी लाभ नहीं होता, नुकसान होता है। यह बात साधारण को नहीं जँचेगी, इसलिए वादविवाद में पड़ना नहीं। आहाहा!

भावार्थः जगत में जीव, उनके कर्म,... भिन्न-भिन्न प्रकार के जीव, उनके कर्म

भिन्न-भिन्न प्रकार के। भिन्न-भिन्न प्रकार के परभव में बाँधे हुए कर्म। **उनकी लब्धियाँ...** उन्हें वर्तमान क्षयोपशम और प्राप्त हुई लब्धियाँ भी अलग-अलग प्रकार की। आहाहा! **आदि अनेक प्रकार के हैं; इसलिए सर्व जीव समान विचारों के हों, ऐसा होना असम्भव है।** आहाहा! सभी जीव समान विचारवाले हों, यह बनना असम्भवित है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। 'घीया'! सुना था कभी कहीं? परमाणु, परमाणु को स्पर्श कर सकता नहीं। आहाहा! ऐसा वस्तु का स्वरूप। तू किसके साथ वाद करेगा? किस प्रकार उसे जँचेगा? तू तेरा करके समा जा, ऐसा कहते हैं।

तू ज्ञायकस्वरूप है। स्व को जाननेवाला। जानकर समा जा, बापू! बाकी बीच में विकल्प आवे, सब आवे, राग हो, संसार के भोगादिक का भी राग हो, तथापि उसे भी जानकर और उससे पृथक् पड़कर अन्दर में जाना। आहाहा! जहाँ भगवान परमात्मा स्वयं विराजता है। आहाहा! ऐसा करेंगे तो ऐसा होगा और ऐसा करेंगे तो ऐसा होगा, यह वस्तु में ऐसा कुछ है नहीं। क्योंकि क्रमबद्धपर्याय है, इसलिए ऐसा करें तो ऐसा होगा, यह बात उसमें है नहीं। आहाहा!

इसलिए कहते हैं **सर्व जीव समान विचारों के हों, ऐसा होना असम्भव है। इसलिए...** असम्भवित है। बन सकता है। देखो, कितने ही ऐसे अच्छे पात्र हों तो उनके साथ बन सकता है, परन्तु सबके साथ बैठे, ऐसी बात नहीं है। आहाहा! और जिस समय में होनेवाली पर्याय, उस समय में परमाणु की और आत्मा की उस समय में वह पर्याय होती है। आगे-पीछे नहीं, पहले-बाद में कोई इन्द्र जिनेन्द्र नहीं कर सकता। आहाहा! अनन्त बल के धनी परमाणु को उसकी जिस समय की पर्याय है, वह दूसरे समय में वह पर्याय कर सके और दूसरी पर्याय होनेवाली, उसे पहले समय में कर सके (ऐसी) ताकत नहीं है। जिनेन्द्र की ताकत नहीं है, इन्द्र की ताकत नहीं है। यह कार्तिकेयानुप्रेक्षा में आया है। कार्तिकेयानुप्रेक्षा में। इन्द्र, जिनेन्द्र कोई कुछ बदलने में समर्थ नहीं है। आहाहा! **इसलिए पर जीवों को समझा देने की आकुलता करना योग्य नहीं है।** आहाहा! तू कुछ समझाने जाएगा तो कुछ निकालेंगे। कुछ अन्दर से उल्टा निकालेंगे, स्वयं को जँचेगी, वैसी बात। आहाहा! कहो! प्रत्येक द्रव्य अनादि से जिस समय में पर्याय होनेवाली है, उस पर्यायरहित द्रव्य नहीं होता। अब पर्यायरहित द्रव्य होता नहीं तो दूसरा द्रव्य उस पर्याय को करे, यह

कहाँ से आया ? कोई द्रव्य निकम्मा है ? निकम्मा अर्थात् ? पर्यायरूपी काम के बिना का कोई द्रव्य है ? जिससे निकम्मे द्रव्य को तू उसे काम करे और तेरा काम पड़ा रहे ? आहाहा ! ऐसा सूक्ष्म है, बाबूभाई ! आहाहा ! वीतरागमार्ग ऐसा सूक्ष्म है इसलिए कहते हैं कि सब एक विचार के हों, ऐसा समझा देने की आकुलता करना योग्य नहीं है। आहाहा ! जिसकी योग्यता होगी, वह समझेगा। आहाहा ! यह स्वयं के लिये है। दूसरे को समझा सके, यह बात तो है ही नहीं। आहाहा !

स्वात्मावलम्बनरूप निज हित में प्रमाद न हो... है ? **स्वात्मावलम्बनरूप...** निज आत्मा का एक अवलम्बन। आहाहा ! **निज हित में प्रमाद न हो...** अपने निज हित में प्रमाद न हो। एकदम वीतरागरूप से तो भले न रह सके परन्तु जो कुछ राग और प्रमाद आवे, उस समय वह आता ही है, ऐसा जानकर तू तुझे जान। आहाहा ! जिस समय में जो पर्याय रागादि आनेवाली है, वह आयेगी। उसे न जानकर तू तुझे जान। ऐसी बात है। आहाहा ! अर्थात् **स्वात्मावलम्बनरूप निज हित में प्रमाद न हो, इस प्रकार रहना...** आहाहा ! **यही कर्तव्य है।** यह कर्तव्य है। अपने हित के लिये निज आत्मा का अवलम्बन लेकर उसमें रहना, यह कर्तव्य है। किसी का कर सके और किसी से ले सके... आहाहा ! तीर्थंकर भी किसी को दे सके और कोई उनके पास से ले सके, ऐसी वस्तु की स्थिति नहीं है। आहाहा ! इसलिए अपने निज आत्मा का हित साधे, वह कर्तव्य है। करनेयोग्य यह है। आहाहा ! ये मन्दिर, पुस्तकें बनावे, वह कहाँ गया तब ? वह तो उसके काल में उसके कारण से होना हो तो होगा। वह जड़ की पर्याय जड़ के कारण से होगी, तेरे कारण से नहीं होगी। आहाहा ! निज कर्तव्य तो यह है। स्वात्मा में निज का अवलम्बन लेकर अपना हित करना, यह कर्तव्य है। आहाहा ! यह श्लोक (पूरा) हुआ।

श्लोक-२६७

[अब इस १५६वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

(शिखरिणी)

विकल्पो जीवानां भवति बहुधा सन्सृतिकरः,
तथा कर्मानेकविधमपि सदा जन्मजनकम् ।
असौ लब्धिर्नाना विमलजिनमार्गे हि विदिता,
ततः कर्तव्यं नो स्व-पर-समयैर्वादवचनम् ।।२६७।।

(वीरछन्द)

भव-कारण स्थावर त्रस आदिक जीवों के हैं भेद अनेक।
सदा जन्म उत्पन्न करे जो कर्मों के भी भेद अनेक॥
निर्मल जिनशासन में लब्धि भी प्रसिद्ध बहु भेद कही।
अतः स्व-पर मतवालों से है वचन विवाद नहीं करणीय॥२६७॥

[श्लोकार्थः] जीवों के, संसार के कारणभूत ऐसे (त्रस, स्थावर आदि) बहुत प्रकार के भेद हैं; इसी प्रकार सदा जन्म का उत्पन्न करनेवाला कर्म भी अनेक प्रकार का है; यह लब्धि भी विमल जिनमार्ग में अनेक प्रकार की प्रसिद्ध है; इसलिए स्वसमयों और परसमयों के साथ वचनविवाद कर्तव्य नहीं है॥२६७॥

श्लोक - २६७ पर प्रवचन

अब, श्लोक १५६। अब इस १५६वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:-

विकल्पो जीवानां भवति बहुधा सन्सृतिकरः,
तथा कर्मानेकविधमपि सदा जन्मजनकम् ।

असौ लब्धिर्नाना विमलजिनमार्गे हि विदिता,
ततः कर्तव्यं नो स्व-पर-समयैर्वादवचनम् ।।२६७।।

श्लोकार्थ : आहाहा! **जीवों के, संसार के कारणभूत ऐसे (त्रस, स्थावर आदि)...** जीव। आहाहा! **बहुत प्रकार के भेद हैं; इसी प्रकार सदा जन्म का उत्पन्न करनेवाला कर्म...** आहाहा! पुण्य और पाप के भाव, वे जन्म को उत्पन्न करनेवाले भाव हैं। आहाहा! **सदा जन्म का उत्पन्न करनेवाला कर्म भी अनेक प्रकार का है;...** किस परिणाम से त्रस होता है और किस परिणाम से एकेन्द्रिय होता है और किस परिणाम से निगोद होता है... आहाहा! और किस परिणाम से स्वर्ग होता है? उसके क्रम में द्रव्य की दृष्टि होने पर जिस क्रम में परिणाम आये, उस परिणाम का फलरूप से आवे, उसे दूसरा कोई बदल नहीं सकता। आहाहा! यह तो सब संसार का उत्साह तो उड़ जाता है। हिम्मतभाई गये?

मुमुक्षु : रुके हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : रुके हैं।

इसी प्रकार सदा जन्म का उत्पन्न करनेवाला... पुण्य और पाप के असंख्य प्रकार हैं, वे जन्म को उत्पन्न करनेवाले ऐसे परिणाम अनेक प्रकार के हैं। आहाहा! **कर्म भी अनेक प्रकार का है;...** आहाहा! वह कर्म शुभाशुभभाव। **यह लब्धि भी विमल जिनमार्ग में...** लब्धि अर्थात्? अपना क्षयोपशमभाव अपने में अपने से होना, वह क्षयोपशम की लब्धि भी अनेक प्रकार की है। किसी को-निगोद को एक अक्षर के अनन्तवें भाग लब्धि और किसी को नौ पूर्व और ग्यारह अंग का जानपना (होवे), मिथ्यादृष्टि होने पर भी और उसे छठवें गुणस्थान में मुनि होने पर भी पाँच समिति तथा तीन गुप्ति का ज्ञान। आहाहा! मिथ्यादृष्टि अभव्य को नौ पूर्व और ग्यारह अंग का ध्यान (हो)। आहाहा!

यह लब्धि भी... लब्धि अर्थात् प्राप्ति। **विमल जिनमार्ग में अनेक प्रकार की प्रसिद्ध है;...** अनेक प्रकार की है। आहाहा! चक्रवर्ती मरकर नरक में जाए। आहाहा! और हरिजन समकिती हो, एकावतारी हो। एक अवतार करके मोक्ष में जाए। आहाहा! ऐसे परिणाम की विचित्रता जीव की भिन्न-भिन्न है। तू किसके साथ वाड़ा में करने जाएगा। वहाँ विवाद उठायेंगे इसमें। आहाहा!

मुमुक्षु : आप भी किसी पत्र का जवाब नहीं देते।

पूज्य गुरुदेवश्री : यूँ ही किसी को नहीं देते। आवे वह पढ़ लेते हैं। वह भव्यसागर कहते हैं कि आओ, इतना लिखो। बेचारा बीस वर्ष की दिगम्बर दीक्षा। धन्य मैं आपकी सभा में बैठकर सुनूँ। वह दिन मेरा धन्य है। आओ, इतना लिखो। परन्तु यहाँ लिखे कौन? लिखकर यहाँ आवे, उसे कहाँ उतारना और वह उतारने का किसे कहना? और उसके भोजन का, आहार का। यहाँ किसी की चिन्ता नहीं। सब का सब करो। सब का सब होवे। वह वापस कहे कि यहाँ साधु को कोई आहार-पानी नहीं दे। तो कहे, वह तो हम कर लेंगे परन्तु आओ, इतना लिखो। यहाँ तुम्हें कहाँ उतारना, यह विचारना... पड़े, कौन इस चिन्ता में? आहाहा! बहुत थे। एक आर्यिका भी वहाँ थी। उदयपुर, आर्यिका थी, स्थानकवासी तेरापन्थी। वहाँ उतरी थी। साथ में बड़ा मकान है। सेठ के मकान में। मुमुक्षु का, गृहस्थ उदयपुर। वह कहे, महाराज! हमारे वहाँ सोनगढ़ आने का भाव है। मैंने कहा, हम किसी को कुछ नहीं कहते। सोनगढ़ हमारे आने का भाव है। जोधपुर नहीं, क्या? हैदराबाद। हैदराबाद थे, तब उससे तीन मील दूर एक साध्वी थी। स्थानकवासी की साध्वी। उसने ऐसा कहलवाया, महाराज! मुझे दर्शन दो। हम वहाँ दर्शन लेने जाएँगे तो हमें रोटियाँ नहीं देंगे। बहुतों को ऐसा हो जाता है कि यह क्या कहते हैं परन्तु यह? एक प्रकार की बात जरा भी बदलती नहीं। यह क्या है? इसलिए कितनों को बेचारों को समझने के लिये हमें इतना कहो कि हम आवें। अथवा तुम यहाँ दर्शन देने आओ। मैंने कहा, हम कहीं आते-जाते नहीं हैं।

मुमुक्षु : विरोध तो बहुत आता है परन्तु आपकी बात बदलती नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे बहुत परन्तु चाहे जो वह हो नहीं। आहाहा! यहाँ यह कहते हैं, देखो! आहाहा!

लब्धि भी विमल जिनमार्ग में अनेक प्रकार की प्रसिद्ध है;... अलग-अलग प्रकार का उघाड़, ज्ञान का उघाड़, दर्शन का उघाड़, अन्तराय का उघाड़। उसका अपने-अपने कारण से भिन्न-भिन्न उघाड़ होता है, उसमें क्या? आहाहा! दो भाईयों के बीच भी कितना अन्तर होता है; एक को कुछ उघाड़ और एक को कुछ उघाड़। आहाहा! **इसलिए स्वसमयों और परसमयों के साथ वचनविवाद कर्तव्य नहीं है।** आहाहा!

मुमुक्षु : लिखित तो कर्तव्य है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखने का भी कर्तव्य नहीं है। कोई कर्तव्य ही नहीं है। लिखे कौन ? एक अक्षर अनन्त परमाणु का बना हुआ। उसके साथ लिखना हो तो हो, लिखे। मैं लिखता हूँ, यह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा ! और यह लिखकर दूसरे समझेंगे तो मुझे पहिचानेंगे, यह सब मिथ्यात्वभाव है। आहाहा !

मुमुक्षु : खानियां तत्त्वचर्चा तो आपकी कृपा से हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल मैंने तो इनकार किया था। मैंने तो इनकार किया था कि चर्चा-वर्चा नहीं की जाती। फूलचन्दजी ने स्वयं की। की और अच्छी हुई। यहाँ इनकार किया। यहाँ चर्चा-वर्चा किसी के साथ करना नहीं। खानियां चार्च और अमुक चर्चा.. आहाहा !

यहाँ यह कहते हैं, वाद और विवाद किसी के साथ नहीं करना।

गाथा-१५७

लद्धूणं णिहि एक्को तस्स फलं अणुहवेइ सुजणत्ते।
तह णाणी णाण-णिहिं भुंजेइ चइत्तु परतत्तिं।।१५७।।

लब्ध्वा निधिमेकस्तस्य फलमनुभवति सुजनत्वेन।
तथा ज्ञानी ज्ञान-निधिं भुङ्क्ते त्यक्त्वा परततिम्।।१५७।।

अत्र दृष्टान्तमुखेन सहजतत्त्वाराधनाविधिरुक्तः। कश्चिदेको दरिद्रः क्वचित् कदाचित् सुकृतोदयेन निधिं लब्ध्वा तस्य निधेः फलं हि सौजन्यं जन्मभूमिरिति रहस्ये स्थाने स्थित्वा अतिगूढवृत्त्यानुभवति इति दृष्टान्तपक्षः। दार्ष्टान्तपक्षेऽपि सहजपरमतत्त्वज्ञानी जीवः क्वचिदा-सन्नभव्यस्य गुणोदये सति सहजवैराग्यसम्पत्तौ सत्यां परमगुरुचरणनलिनयुगलनिरतिशय-भक्त्या मुक्तिसुन्दरीमुखमकरन्दायमानं सहजज्ञाननिधिं परिप्राप्य परेषां जनानां स्वरूप-विकलानां ततिं समूहं ध्यानप्रत्यूहकारणमिति त्यजति।

निधि पा... मनुज तत्फल वतन में गुप्त रह ज्यों भोगता।
त्यों छोड़ परजन-संग ज्ञानी ज्ञान निधि को भोगता॥१५७॥

अन्वयार्थ : [एकः] जैसे कोई एक (दरिद्र मनुष्य) [निधिम्] निधि को [लब्ध्वा] पाकर [सुजनत्वेन] अपने वतन में (गुप्तरूप से) रहकर [तस्य फलम्] उसके फल को [अनुभवति] भोगता है, [तथा] उसी प्रकार [ज्ञानी] ज्ञानी [परततिम्] पर जनों के समूह को [त्यक्त्वा] छोड़कर [ज्ञाननिधिम्] ज्ञाननिधि को [भुंक्ते] भोगता है।

टीका : यहाँ दृष्टान्त द्वारा सहजतत्त्व की आराधना की विधि कही है।

कोई एक दरिद्र मनुष्य क्वचित् कदाचित् पुण्योदय से निधि को पाकर, उस निधि के फल को सौजन्य अर्थात् जन्मभूमि ऐसा जो गुप्त स्थान उसमें रखकर अति

गुप्तरूप से भोगता है; ऐसा दृष्टान्तपक्ष है। [१]दार्ष्टान्तपक्ष से भी (ऐसा है कि)— सहजनपरमतत्त्वज्ञानी जीव क्वचित् आसन्नभव्य के (आसन्नभव्यतारूप) गुण का उदय होने से सहजवैराग्यसम्पत्ति होने पर, परम गुरु के चरणकमलयुगल की निरतिशय (उत्तम) भक्ति द्वारा मुक्तिसुन्दरी के मुख के [२]मकरन्द समान सहजज्ञाननिधि को पाकर [३]स्वरूपविकल ऐसे पर जनों के समूह को ध्यान में विघ्न का कारण समझकर छोड़ता है।

गाथा - १५७ पर प्रवचन

अब १५७ गाथा। दृष्टान्त देते हैं।

लद्धूणं णिहि एक्को तस्स फलं अणुहवेइ सुजणत्ते।
तह णाणी णाण-णिहिं भुंजेइ चइत्तु परतत्तिं।।१५७।।

निधि पा... मनुज तत्फल वतन में गुप्त रह ज्यों भोगता।
त्यों छोड़ परजन-संग ज्ञानी ज्ञान निधि को भोगता॥१५७॥

आहाहा! **टीका : यहाँ दृष्टान्त द्वारा सहजतत्त्व की आराधना की विधि कही है।** दृष्टान्त द्वारा सहजतत्त्व भगवान आत्मा की आराधना की विधि कही है। भगवान की आराधना और पंच परमेष्ठी को ऐसा करना, यह कुछ नहीं। आहाहा! **कोई एक दरिद्र मनुष्य क्वचित् कदाचित्...** क्वचित् और कदाचित् भले थोड़ा काल **पुण्योदय से निधि को पाकर,...** लो, यहाँ तो यह आया। **पुण्योदय से निधि को पाकर,...** वे इनकार करते हैं न? पुण्य के कारण नहीं प्राप्त होती। समाज को व्यवस्था आती नहीं इसलिए... यहाँ तो पुण्योदय से है। भाई हुकमचन्दजी ने भी यह लिखा है कि पैसा मिलता है, वह पुण्य के कारण, परन्तु स्वयं पैसा पाप है। चौबीस परिग्रह में वह परिग्रह है। चौदह प्रकार का अन्तरंग परिग्रह, दस प्रकार का बाह्य परिग्रह। यह चौदह प्रकार का परिग्रह मिलता पुण्य से है परन्तु स्वयं पाप है। आहाहा! अर्थात् इन सेठियों को पैसावाला कहा जाता है, वे पापी

१. दार्ष्टान्त=वह बात जो दृष्टान्त द्वारा समझाना हो; उपमेय।
२. मकरन्द=पुष्प-रस; पुष्प-पराग।
३. स्वरूपविकल=स्वरूप प्राप्ति रहित; अज्ञानी।

कहलाते हैं, ऐसा कहते हैं। पुण्यवाले कहलाते नहीं। पुण्य तो पूर्व का था, वह तो खर्च हो गया। आहाहा!

मुमुक्षु : सम्हालकर रखे, वह पाप कहलाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्हालकर रखे और वह मेरा माने, यही मिथ्यात्व है। एक पैसा और एक पाई या एक नोट मेरा है। वह तो जड़ है, उसे अपना माने, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

मुमुक्षु : मिथ्यादृष्टि के तो ढ़ेर हो पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : ढ़ेर। ढ़ेर तो कितने? ओहोहो!

प्रभु के वचन जहाँ, असंख्य चौबीसी के समय जितने तो निगोद के शरीर; उसमें एक-एक निगोद के शरीर में अनन्त जीव; उसके अनन्तवें भाग मुक्ति पाते हैं। आहाहा! धन्य भाग्य कि मनुष्यपना मिला और उसे यह साधन मिले। अब इसे काम करना, वह इसके हाथ में है। इस निगोद के एक शरीर के अनन्तवें भाग में। शरीर कितने? कि असंख्य चौबीसी के समय जितने। एक निगोद के अनन्तवें भाग में गये और जाएँगे। बाकी तो संसार दु:खी.. दु:खी... दु:खी... आहाहा! यह निगोद का दु:ख नारकी के दु:ख की अपेक्षा अधिक है।

लोग नारकी के दु:ख वह संयोग ऐसा काटे, उसके कारण होता है (ऐसा मानते हैं परन्तु) वह दु:ख नहीं है। नारकी को दु:ख उस संयोग पर लक्ष्य जाता है, वह दु:ख है। उस संयोग का दु:ख नहीं है। संयोग तो उसे स्पर्श भी नहीं करते। आहाहा! ऐसे तलवार मारे या ऐसे काटे, वह तो छूता भी नहीं। उसका उसे किसी को दु:ख है ही नहीं। मात्र उस समय 'मुझे ऐसा करता है', ऐसा जो अरुचि का द्वेष होता है, उस द्वेष का वेदन करता है, वह दु:ख है। आहाहा! बात-बात में अन्तर। आहाहा!

इसी प्रकार यह चूरमा का लड्डू खावे, उसका स्वाद आता है, वह बिल्कुल नहीं, क्योंकि वह तो जड़ है और यह चैतन्य है। अरूपी, रूपी को स्पर्श किस प्रकार करे? यह तो रूपी, रूपी को स्पर्श नहीं करता। परमाणु रूपी, दूसरे परमाणु को स्पर्श नहीं करता तो भगवान आत्मा अरूपी वह कर्मरूपी लड्डू को स्पर्श कैसे करे? मात्र उस पर लक्ष्य जाने

पर 'यह ठीक है' ऐसा जो राग करे, उस राग को वेदन करता है। लड्डू का वेदन नहीं करता, लड्डू को नहीं खाता। आहाहा! पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, **दरिद्र क्वचित् कदाचित् पुण्योदय से निधि को पाकर,...** यहाँ तो आचार्य ने स्पष्ट बात की है।

मुमुक्षु : पैसे को निधि कहा, इतनी तो पैसेदार को राहत रहे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : निधि के उसमें क्या? निधि तो पत्थर को कहते हैं, उसमें क्या है? पारसमणि को पारसमणि कहे। वह तो पत्थर कहा, उसमें क्या हुआ? पारसमणि भी पत्थर है। नाम बड़ा दिया, उसमें क्या हो गया? कि यह मणि है और यह माणेक है और यह मोती है, परन्तु उसमें बड़ा क्या हो गया? उसमें स्पर्शा क्या और उसका क्या हो गया?

मुमुक्षु : पैसा अधिक...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं पैसे। आते नहीं और जाते भी नहीं और छूते भी नहीं। आहाहा! अरे! पूरी दुनिया से अन्तर है। वीतराग का मार्ग परमेश्वर वीतराग तीन लोक के नाथ का मार्ग पूरा अलग है। आहाहा! दुनिया मजाक करे ऐसा है। स्पर्श नहीं करता। आहाहा! यह तलवार से सिर काटे, वह तलवार सिर को स्पर्श नहीं करती और सिर कटता है? यह तो यहाँ क्रिया उसे होने का काल है। है, वह तो निमित्त है। निमित्त कुछ करता नहीं। क्योंकि निमित्त की पर्याय निमित्त में होती है और उपादान की पर्याय उपादान में होती है। आहाहा! ऐसी चीज़ है। पहले इसे अभी समझ करना कठिन पड़ेगा। आहाहा!

जहाँ-तहाँ मैं करूँ... मैं करूँ... मैं करूँ... मैंने यह किया... मैंने यह किया... मुझसे यह हुआ, मुझसे यह विस्तार को प्राप्त हुआ। आहाहा! ऐसी गहरी शल्य कठोर है, प्रभु! आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है और वह तो स्व को जाननेवाला है, पर को जाननेवाला भी नहीं। आहाहा! पर को स्पर्श नहीं करता, वहाँ जाने किस प्रकार? जानना तो उसे कहा जाता है कि जिसमें तन्मय हो, उसे जानना (हुआ कहा जाता है)। अपने ज्ञान में-स्वयं स्वपर प्रकाशक ज्ञान में तन्मय है, इसलिए स्वयं अपने को जानता है। उस सम्बन्धी का ज्ञान अपना अपने में होता है, अपने को जानता है। उसे नहीं जानता। आहाहा! यह आयेगा इसमें। केवलज्ञान के अधिकार में। आहाहा! बहुत बात-बात में अन्तर।

मुमुक्षु : सब अन्तर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब अन्तर है। बहुत अन्तर।

पुण्योदय से निधि को पाकर, उस निधि के फल को... यह तो समझाना है। **पुण्योदय से निधि को पाकर,...** वह पाता है, उसे मिलता है? स्पर्श करता है? यह तो दृष्टान्त देते हैं। **पुण्योदय से निधि को पाकर,...** अरबों रुपये का निधान मिला। अन्दर से चरा (कलश) मिला। **उस निधि के फल को सौजन्य अर्थात् जन्मभूमि ऐसा जो गुप्त स्थान उसमें रखकर अति गुप्तरूप से भोगता है;...** बाहर प्रसिद्ध करने जाए तो फिर लुटेरे लूटें। लाओ पैसा... लाओ पैसा... लाओ तुम्हारा। तुम्हारे पास बहुत पैसा है, इतना भाग लाओ, इतना लाओ। दुनिया से पूरी यह बात उलटी है। ओहोहो! यह तो दृष्टान्त है, हों! वह भोगता है और वह नहीं। उसे मिलता है, ऐसा भी नहीं।

यह तो **मनुष्य क्वचित् कदाचित् पुण्योदय से निधि को पाकर,...** कलश मिले, रत्न मिल जाए। आहाहा! **उस निधि के फल को सौजन्य अर्थात् जन्मभूमि ऐसा जो गुप्त स्थान उसमें रखकर अति गुप्तरूप से...** हमारे पास करोड़ पैसा (रुपये) हैं या अरब हैं, उसकी भी खबर नहीं पड़ने देना। आहाहा! क्योंकि खबर पड़ने देगा तो लुटेरे आएँगे। लुटेरे तो कहे, हमको दो, वह कहे हमको दो, हमको दो। यहाँ पानी का कुआँ खोदा है, यह अमुक, यह अमुक। इसलिए कहते हैं कि गुप्त रखना। मैं पैसेवाला हूँ, ऐसे बाहर प्रसिद्ध नहीं करना। आहाहा! परन्तु बहुत अन्तर, उसमें बात-बात में अन्तर है। **ऐसा जो गुप्त स्थान उसमें रखकर अति गुप्तरूप से भोगता है;...** आहाहा! **ऐसा दृष्टान्तपक्ष है।** ऐसा दृष्टान्तपक्ष से (कहा) अब सिद्धान्त दार्ष्टान्त द्वारा समझाना हो, वह बात।

दार्ष्टान्तपक्ष से भी (ऐसा है कि)—सहजनपरमतत्त्वज्ञानी जीव... आहाहा! स्वाभाविक परमतत्त्वज्ञान को **जीव क्वचित् आसन्नभव्य के (आसन्नभव्यतारूप) गुण का उदय होने से सहजवैराग्यसम्पत्ति होने पर,...** सहज वैराग्यरूपी सम्पत्ति होने पर... आहाहा! **परम गुरु के चरणकमलयुगल की निरतिशय (उत्तम) भक्ति द्वारा...** निमित्त से बात है। **परम गुरु के चरणकमलयुगल की...** अब एक ओर कहे कि कोई एक को दे सके नहीं और एक और ऐसा लिखते हैं। यह व्यवहार के कथन बहुत होते हैं। उसे मान ले कि व्यवहार सच्चा है। व्यवहार सच्चा है। व्यवहार है अवश्य परन्तु वह व्यवहार निश्चय

को देता है, यह बात मिथ्या है। व्यवहार और निश्चय दोनों नय हैं। नय है तो नय का विषय है। दोनों विषयी हैं तो उनका विषय है परन्तु वह एक विषय आदरनेयोग्य नहीं है और जाननेयोग्य है तथा एक आदरणीय है, ऐसी दो बातें हैं। आहाहा! व्यवहारनय नहीं है, ऐसा नहीं है। व्यवहारनय झूठा है, बात सही, परन्तु है अवश्य। आहाहा!

परम गुरु के चरणकमलयुगल की निरतिशय (उत्तम) भक्ति द्वारा मुक्तिसुन्दरी के मुख के... आहाहा! उसे तो यह करना, कहते हैं। भले अरबों रुपये मिले हों। आहाहा! सहज भक्ति द्वारा **मुक्तिसुन्दरी के मुख के मकरन्द समान... मकरन्द=पुष्प-रस; पुष्प-पराग। सहजज्ञाननिधि को पाकर...** आहाहा! अपना सहज स्वभाव, वह ज्ञानस्वरूपी नित्य, जो ध्रुवस्वरूप भगवान आत्मा, जिसकी उत्पत्ति और विनाश नहीं और जो स्वभाव से खाली नहीं, ऐसी निधि को पाकर। आहाहा! **सहजज्ञाननिधि को पाकर, स्वरूपविकल ऐसे पर जनों के समूह को ध्यान में... 'स्वरूपविकल=स्वरूप प्राप्ति रहित; अज्ञानी।...' ऐसे पर जनों के समूह को ध्यान में विघ्न का कारण समझकर छोड़ता है।** पर का संग छोड़ता है। भले अरबों रुपये मिले, तो वह छोड़ देता है। अकेला रहता है। ऐसे ज्ञाननिधि मिली, मुझे यह मिला इसलिए तुम मेरा संग करो। यह तो कहते हैं संग करेगा तो पाप बँधेगा। आहाहा! परद्रव्य का संग, असंग का संग, असंगी ऐसा भगवान आत्मा, उसे परद्रव्य के संग में जोड़ना नहीं, ऐसा कहते हैं। बात-बात में अन्तर। आहाहा! ऐसी वीतराग के मार्ग की पद्धति है, बापू! आहाहा! मुनियों ने स्पष्ट करके रखा है, दुनिया-समाज मानेगी या नहीं? या समाज सुगठित रहेगी या नहीं? यह दरकार नहीं की है। यह मार्ग है। यह समझना हो वह समझ लो। आहाहा! करने का यह एक ही है कि अन्दर में जाना और स्थिर होना है। आत्मा को जानकर, श्रद्धा करके स्थिर होना, यही कर्तव्य है। बाकी कथा करना और यह करना और वह करना, वह कोई आत्मा का कर्तव्य नहीं है। आहाहा!

स्वरूपविकल ऐसे पर जनों के समूह को ध्यान में... संग होने पर तुझे विकल्प उठेगा। **ध्यान में विघ्न का कारण समझकर छोड़ता है।** आहाहा! असंगपना प्रभु तेरा तत्त्व, उसे संग के कारण विकल्प उठेगा। संग के कारण अधर्म आयेगा। आहाहा! असंग रहे, संग को छोड़ दे, तज दे। आहाहा! असंग ऐसा तेरा तत्त्व, उसमें रम, वह तेरी मुक्ति का कारण है। आहाहा! दूसरे को समझा दूँ और बहुत समझे तो मुझे लाभ हो, यह बात नहीं है।

मुमुक्षु : बहुत जजों को समझाया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई समझाता नहीं; मानता है। आहाहा! यह वकालात भी वकालातरूप से नहीं करता। यह वाणी, वाणी के कारण से होती है। आहाहा! कठिन काम। एक समय की पर्याय, उस-उस द्रव्य की उस-उस समय में (होती है)। पर्यायरहित द्रव्य नहीं होता, तुझे उसकी पर्याय करना है, यह क्या है? आहाहा! किसी भी मनुष्य को, जीव को या जड़ को उसकी वर्तमान पर्याय रहित वह नहीं होता, तो तुझे उसकी पर्याय करनी है? क्या करना है तुझे? आहाहा! गजब बात है, भाई! आहाहा!

अनन्तानन्त द्रव्य हैं, उतनी ही अनन्त-अनन्त स्व पर्याय है। पर्यायरहित द्रव्य किसी काल में तीन काल में नहीं है। कोई पर्याय नहीं और अकेला द्रव्य ही है, ऐसा तीन काल में कभी नहीं है। पर्याय नहीं तो द्रव्य भी नहीं। क्योंकि पर्याय से तो द्रव्य सिद्ध होता है। पर्याय नहीं तो द्रव्य भी नहीं। आहाहा! अनन्त द्रव्य अपनी पर्यायसहित रहे हुए हैं, वे निकम्मे पड़े नहीं हैं। निकम्मे अर्थात् पर्यायरूपी कार्य से रहित नहीं हैं, तो उनका कार्य तुझे करना है? आहाहा! ऐसी बातें हैं। अधिकार आवे तब यह बात चले न! आगे दूसरा होवे तब... आहाहा!

(संवत्) १९६९ का वर्ष। दीक्षा लेने से पहले देखने गये। 'गढ्डे', हमारा गाँव है न? तो गढडा में स्वामी नारायण का बड़ा मन्दिर, वह देखने गये। देखने गये तो उसे ख्याल तो अवश्य कि यह दीक्षा लेनेवाले हैं और शरीर छोटा, रूपवान, बाईस वर्ष की उम्र। इसलिए वह ऐसा बोले, ईश्वर के बिना पत्ता नहीं हिलता। इस जगत में ईश्वर के बिना पत्ता नहीं हिलता। वह माने कि यह जैन है। इसे बेचारे को कुछ भान नहीं होता। ईश्वर के बिना पत्ता नहीं हिलता। पत्ते की पर्याय के अनन्त जीवों को दूसरा जीव उन्हें हिलाता नहीं। आहाहा! अब यह बात... उसके बाबा थे। वे नहाते थे। हम सब देखने गये। मकनभाई है न? वह और मैं दोनों देखने गये थे। मैंने कहा, यह गप्प मारता है। स्वामी नारायण का बाबा होकर गजब काम करता है ऐसा! ईश्वर के बिना पत्ता नहीं हिलता, ईश्वर से ही सब होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : जैन लोग कर्म को मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे सब कर्म को माने, वह का वह प्रकार है। कर्म से होता है और

कर्म से मुझे विकार होता है, कर्म मुझे भटकाता है। वह की वह मिथ्यात्व की जाति है। वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई! आहाहा! यह वहाँ कोई व्यापार-व्यापार में नहीं मिलता। कपूरभाई! वहाँ व्यापार में मिलता नहीं, वहाँ कलकत्ता में। आहाहा! अरे रे! यह बात सुनकर अन्तर में इसे रुचना... आहाहा! अनन्त काल का कर्ज निकाल डालना है।

यहाँ तो कहते हैं **सहजज्ञाननिधि को पाकर स्वरूपविकल ऐसे पर जनों के समूह को...** आहाहा! स्वरूप के अजान-अज्ञानी जो कुछ का कुछ बोलेंगे, कुछ का कुछ करेंगे। उनको **ध्यान में विघ्न का कारण समझकर छोड़ता है।** आहाहा!

श्लोक-२६८

[अब इस १५७वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं:]

(शालिनी)

अस्मिन् लोके लौकिकः कश्चिदेकः,
लब्ध्वा पुण्यात्काञ्चनानां समूहम्।
गूढो भूत्वा वर्तते त्यक्त-सङ्गो,
ज्ञानी तद्वत् ज्ञान-रक्षां करोति।।२६८।।

(वीरछन्द)

ज्यों लौकिक जन धन पाकर परसंग तजें अरु गुप्त रहें।
इस प्रकार ज्ञानीजन भी निज ज्ञान-निधि रक्षण करते॥२६८॥

[श्लोकार्थः] इस लोक में कोई एक लौकिक जन पुण्य के कारण धन के समूह को पाकर, संग को छोड़कर गुप्त होकर रहता है; उसी की भाँति ज्ञानी (पर के संग को छोड़कर गुप्तरूप से रहकर) ज्ञान की रक्षा करता है॥२६८॥

श्लोक - २६८ पर प्रवचन

अब इस १५७वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं:—

अस्मिन् लोके लौकिकः कश्चिदेकः,
लब्ध्वा पुण्यात्काञ्चनानां समूहम्।
गूढो भूत्वा वर्तते त्यक्त-सङ्गो,
ज्ञानी तद्वत् ज्ञान-रक्षां करोति।।२६८।।

श्लोकार्थः आहाहा! **इस लोक में कोई एक लौकिक जन पुण्य के कारण...** आहाहा! है न? **पुण्यात्काञ्चनानां। धन के समूह को पाकर,...** लो! इसमें तो स्पष्ट बात है। पुण्य पैसे में निमित्त है। आत्मा का पुरुषार्थ या समाज का बंटवारा का काम नहीं है। समाज को विभाजन करना नहीं आता, इसलिए (यह सब बराबर नहीं है, ऐसा कहते हैं) आहाहा! बात यह है कि पण्डित को पुण्य कम होवे न, कम पुण्यवाले हम हल्के और बड़े पुण्यवाले बड़े हैं, ऐसा नहीं होना चाहिए। इसलिए पुण्य के कारण नहीं, (ऐसा सिद्ध करना है)। पुण्य के कारण भले बड़े हों। इसमें आत्मा का क्या भला हुआ? और तुझे उसमें नुकसान क्या हुआ? अरबोंपति भले हो। आहाहा!

वहाँ अपने नहीं, नैरोबी? एक गाँव में साढ़े चार सौ तो करोड़पति। साढ़े चार सौ। और पन्द्रह तो अरबपति। सौ करोड़ ऐसे पन्द्रह। एक आया था। श्वेताम्बर का रतिलाल आया था। उसने ऐसा कहा कि यह आपके दिगम्बर मण्डल के लोग हमारे श्वेताम्बर मन्दिर में नहीं आते और प्रतिमा के दर्शन नहीं करते। उसे वहाँ कहाँ कहना। कहा, तत्त्वज्ञान समझने के बाद व्यवहार समझ में आयेगा। उसे दूसरा क्या कहना? कि यह खोटा है, ऐसा कहना? तत्त्वज्ञान वस्तु बापू! पहले समझो, फिर तत्त्वज्ञानी को व्यवहार कैसा होता है, वह व्यवहार बाद में समझ में आयेगा। आहाहा! बेचारा सुनता था। वापस वहाँ भी आया था, मुम्बई आया था। मलाड। देश में आया था। आहाहा! परन्तु यह किसे पड़ी है, कोई घड़ी, दो घड़ी जाकर आवे। जो कुछ बात उल्टी सीधी करके समय व्यतीत कर चले आवें। आहाहा!

किस समय आकर देह छूट जाएगी, आहाहा! बैठे-बैठे कुछ न हो और फूं.. हो जाए। आहाहा! स्वरूपचन्द कहता था। मलकापुर का स्वरूपचन्द लड़का है, अभी विवाह हुआ है। कुँवारा था तब दस-दस हजार का बड़ा कपड़े का व्यापारी। मोक्षमार्गप्रकाशक जिसे पूरा कण्ठस्थ। मलकापुर का स्वरूपचन्द है। वह कहता था कि मेरा मित्र अट्ठाईस वर्ष का और मैं, ऐसे दोनों बैठे थे। कुछ नहीं हुआ, बातें करते थे। ऐसे फूं.. हुआ। ऐसा देखा वहाँ मर गया। कुछ करता, कुछ नहीं। एक रोग नहीं, कुछ नहीं, कोई पीड़ा नहीं। ऊंहकार नहीं। कुछ नहीं, ऐसे फूं... हुआ। ऐसा देखा वहाँ मर गया। आहाहा! स्वरूपचन्द है। लड़का होशियार है, मस्तिष्कवाला है। मलकापुर में। मलकापुरवाला है कोई? रमेश है। आहाहा! किसे-किसे करना? किस क्षण में, किस समय में... संयोगी चीज़, क्षेत्र अलग, काल अलग, भाव अलग। ऐसे तत्त्व के साथ इस तत्त्व का काल अलग, भाव अलग, स्थल अलग। आहाहा! यह कब स्फुरित होगा? कहते हैं कि वह सब विचार करके सत् ज्ञाननिधि को पाकर। आहाहा! ऐसे जनों को ध्यान में विघ्न का कारण जानकर छोड़ दे। वे उल्टे-टेढ़े कुतर्क करनेवाले बहुत मिलेंगे। आहाहा! ऐसे कुतर्क को सुनना छोड़ दे। आहाहा!

यहाँ यह कहा, **लोक में कोई एक लौकिक जन पुण्य के कारण धन के समूह को पाकर, संग को छोड़कर गुप्त होकर रहता है; उसी की भाँति ज्ञानी (पर के संग को छोड़कर गुप्तरूप से रहकर) ज्ञान की रक्षा करता है।** आहाहा! वह विज्ञापन नहीं करता कि हमें ऐसा हुआ, हमें ऐसा हुआ... हमें ऐसा हुआ... हमें ऐसा हुआ। गुप्तरूप से स्वयं ज्ञान को भोगता है। विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)